

फटी हुई लेकिन झूठी नहीं?

गिरिराज किराडू

The discourse of post Enlightenment English colonialism often speaks in a tongue that is forked, not false.

Homie Bhabha, Of Mimicry and Man: The Ambivalence of Colonial Discourse

ब्रदी नारायण की इस 'दास्तान' पर कोई भी बात कुछ बेहद जाहिर अंतर्विरोधों को नजरअंदाज न करके ही की जा सकती है— इसके 'लोक' विमर्श के स्रोत लोक में नहीं, 'आधुनिक', 'अरबन'/मेट्रोपोल यूनिवर्सिटी स्पेस में, प्रिण्ट कल्चर में हैं, इसका शीर्ष रूपक 'फटी हुई जीभ' (Forked Tongue) खुद उसी यूनिवर्सिटी कल्चर में मैनुफैक्चर हुआ है;¹ यह लोक को लगभग होमोजिनस ढंग² से 'रेप्रेजेंट' करती है और 'प्रतिनिधित्व' को न सिर्फ समस्याग्रस्त नहीं करती बल्कि उसे एक उपाधि की तरह धारण करती है (और इसीलिए लोक को 'वाणी देने वालों की एक एडहॉक शिनाख्त तो करती है पर खुद लोक की वाणी की नहीं); और सबसे विकट यह कि यह पाठ समाजविज्ञानी/कवि/लेखक को लोक की 'अथॉरिटी' की तरह कल्पित करता है। ये अंतर्विरोध लेकिन इस दास्तान को न कम महत्वपूर्ण बनाते हैं न कम बहसतलब बल्कि इन्हीं के कारण, शायद, इससे बहस करने की सर्वाधिक गुंजाइश बनती है।

2

इस दास्तान में दो संरचनात्मक सतहें हैं, दो रूपक हैं जिन्हें यह दास्तान किसी एक सतह, एक रूपक— फटी हुई जीभ में संश्लेषित करना चाहती है। एक रूपक का सम्बंध उपनिवेशीकरण की उस उदास कथा से है जो हिन्दी में कभी ठीक से कही नहीं गयी। दूसरे का साहित्यिक कैननाईजेशन की उस उलझी हुई पॉलेमिकल कथा से जो हिन्दी की सबसे ज्यादा कही जाने वाली कथा है, कुछ इस हद तक कि कभी कभी लगता है वही हिन्दी के समूचे साहित्यिक नाट्य की 'एकमात्र' कथा है। यह तथ्य कि यह दास्तान, रणनीतिपूर्वक, 'नब्बे के दशक' से आरम्भ होती है, इसे एक और तरह से पॉलेमिकल बनाता है।³

इस दास्तान में पॉलेमिकल' और पॉलिटिकल' अक्सर एक दूसरे का चेहरा पहन लेते हैं।

3

उपनिवेशीकरण की जो उदास कथा हिन्दी में लगभग नहीं कही गयी है उसे यह दास्तान कुछ मोटे स्ट्रोकस में, सार संक्षेप में, एक रूपक की इकॉनामी में कहने की कोशिश करती है। जितना होमोजिनस ढंग से यह अपने अन्य— मेट्रोपोल— को निर्मित करती है उससे कहीं अधिक खुद हाशिये, स्थानीय या लोक को भी। वह यह तो नजरअंदाज करती ही है कि मेट्रोपोल खुद कई हाशियों का समुच्चय है यह भी कम देखना चाहती है कि हाशिया, स्थानीय या लोक भी कोई मोनोलिथिक संरचना नहीं है। उसी तरह साहित्यिक कैननाईजेशन की समांतर कथा में भी यह दास्तान यह नजरअंदाज करती है कि मेट्रोपोल में साहित्य मेट्रोपोल के हाशिये पर है उसी तरह जैसे लोक में 'लोक को वाणी देने वाले' हाशिये पर हैं। दोनों तरफ स्वनियुक्त प्रतिनिधित्व है। क्या यह दो अजब हाशियों की कथा है जो उनके द्वारा

अपने अपने स्पेस के प्रतिनिधित्व के एक से दावे पर टिकी है?

4

यह पाठ समूची भारतीय आधुनिकता की कल्पना फटी हुई जीभों के वचन की तरह करता है और ऐसे किसी पूर्व औपनिवेशिक, आधुनिकेतर स्पेस की भी जो आधुनिकता/औपनिवेशिकता आदि से दमित है लेकिन उसके प्रभाव से बाहर है। ऐसा 'शुद्ध' साबुत जीभ वाला स्पेस एक कन्स्ट्रक्ट ही हो सकता है और दिलचस्प है कि 'भारतीय संस्कृति के रखवैये' नैरेटिव भी ऐसे ही किसी शुद्ध पूर्व औपनिवेशिक, पूर्व आधुनिक स्पेस की कल्पना के बिना सम्भव नहीं।

5

यह बात हमने एकाधिक बार कही है कि उपनिवेशीकरण की उदास कथा हिन्दी में कभी ठीक से नहीं कही गयी। बंदी नारायण की यह दास्तान यह नहीं कहती कि नवें दशक से पहले ही नहीं, बल्कि कभी भी, यह उदास कथा हिन्दी में ठीक से क्यों नहीं कही गयी? क्या इसलिए कि हिन्दी में वामपंथ/प्रगतिशीलता की जो कल्चरल हेजेमनी स्थापित हुई उसके कारण उत्तर औपनिवेशिक विमर्श हिन्दी के साहित्यिक और एकेडेमिक स्फीयर्स में सम्भव नहीं हुए? उसने उत्तर औपनिवेशिक विमर्शों को एक प्रच्छन्न 'पुनरुत्थानवादी' विमर्श की तरह देखा (स्पीवाक जैसी पोजिशन इधर नहीं हो सकती— वे खुद को 'प्रेक्टिकल, मार्क्सिस्ट-फेमिनिस्ट-डिक्सट्रक्सनिस्ट' कहती हैं) और उपनिवेशीकरण की कथा को साम्राज्यवाद और उसके विरोध की एक ट्रांस नेशनल कथा की तरह बांचने की कोशिश की। प्रगतिशीलता के यूनिवर्सल विमर्श में स्थानीयता का स्वीकार देर से ही हुआ। यह संयोग नहीं कि त्रिलोचन और नागार्जुन को कैननाईज होने में बहुत देर लगी। यह दास्तान यह सब नहीं कहती क्योंकि वह हेजेमनी भले अब उतनी सशक्त न हो लेकिन एक प्रो लेफ्ट पोजिशन के बिना हिन्दी में अब भी कोई कैननाईजेशन आसानी से सम्भव नहीं है जो करना इस दास्तान का पॉलेमिकल फंक्शन है। क्या इस दास्तान का आभासी रूप से वामपंथी होना! एक पॉलेमिकल फंक्शन से अधिक कुछ है?

6

*सारे अपराध मातृभाषाओं में किये जाते हैं
जिनमें हरदम होता रहता है मासूमियत का विमर्श⁵*

जिन चरित्रों का यह दास्तान लैम्पूनीकरण करती है— गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक, सलमान रश्दी — वे उपनिवेशीकरण की ही कथा कहने की कोशिश करते रहे हैं। गायत्री चक्रवर्ती फ्रेंच भी बोल लिख सकती हैं तो फ्रेंच भी साला मैं तो साहब बन जाने के लिए सीखती हैं? अरुंधती राय की जीभ इसलिए फटी हुई है कि वे अंग्रेजी बोलती हैं या विक्रम सेठ या झुम्पा लाहिरी इसलिए दमनकारी हो गये कि वे अंग्रेजी में लिखते हैं? प्रश्न यह है कि वे अंग्रेजी में क्या कहते हैं? गायत्री स्पीवाक और विक्रम सेठ को, सलमान रश्दी और डैनी बॉयल, अरुंधती राय और झुम्पा लाहिरी को एक जैसा कहना इस दास्तान की समरूपीकरण युक्ति का चरम है।

मातृभाषाओं में भले हरदम न होता रहता हो मासूमियत का विमर्श न 'सारे' अपराध मातृभाषाओं में ही होते हों लेकिन यह अवश्य है कि मातृभाषाओं में भी होते हैं अपराध, दमन, दुष्टताएं, षडयंत्र।

7

हर पॉलेमिकल कथा की तरह यह कथा भी नेम ड्रापिंग करती है और ऐसा करते हुए लगभग एक भूगोल कथा हो जाती है। आलोकधन्वा, ऋतुराज, राजेश जोशी इसलिए अरुण कमल या ज्ञानेन्द्रपति जैसे कवि नहीं हो सकते कि वे भी दिल्ली से दूर रहते हैं। आलोकधन्वा, ऋतुराज, राजेश जोशी के यहां स्थानीय एक यूनिवर्सल, समग्रतामूलक आख्यान (साम्यवाद) के बिना नहीं हो सकता बल्कि अपनी अपेक्षाकृत अधिक 'दृश्यमान' 'लोकोन्मुखता' (जिसका ज्ञानेन्द्रपति के यहां एक रूप संस्कृतोन्मुखता भी

है) के बावजूद यह अरुण कमल और ज्ञानेन्द्रपति के यहां भी नहीं हो सकता।

इस तरह के एप्रोप्रिएशन में यह दास्तान पॉलिटिकल से एक त्वरित पॉलेमिकल चेहरे में चली आती है।

8

हिन्दी के साहित्यिक नाट्य में जो कथा सबसे अधिक कही जाती है— साहित्यिक कैननाईजेशन की कथा— उसके बारे में सबसे बड़ा रहस्य वही है जो सब जानते हैं: कवि/लेखक चाहे दिल्ली का हो या दरभंगा का, रैडिकल हो या मॉडरेट, वामपंथी हो या लोकतंत्रवादी या 'कलावादी' कैननाईजेशन के लिए यह अब लगभग अनिवार्य है कि उसकी पहचान किसी किस्म की सत्ता में अनूदित हो सके। यह सत्ता राज्य के उपकरणों या उसके मध्यस्थों, विश्वविद्यालयों, अकादमियों, अखबारों— के मार्फत आती हो या राज्य की मशीनरी का हिस्सा होने से या निजी सम्पत्ति से इससे फर्क नहीं पड़ता। क्या अब यह सम्भव है कि मुक्तिबोध जैसा सचमुच का हाशिये का आदमी (जिसका भूगोल उसे इस दास्तान का नायक बना सकता था और जिसकी विश्वदृष्टि फटी जीभ वाला खलनायक) हमारे समय में कैननाईज हो पाता? उस वक्त भी उनका कैननाईजेशन मरण शैय्या पर ही आरम्भ हुआ था।

9

हिन्दी साहित्य सिर्फ कल्पना में एक गणराज्य है?

संदर्भ

1. जैसा आरम्भिक उद्धरण बताता है होमी भाभा के काम से यह रूपक लोकप्रिय हुआ है।
2. यह इसलिए भी खासतौर पर दिलचस्प है कि न सिर्फ यह दास्तान एक दूसरे स्तर पर 'एकरूपता' के विरुद्ध है, बट्टी का शेष काम (शोध आदि) भी इसके विरुद्ध होना चाहिए। मुझे उनका ऐसा कुछ काम, जो गौरतलब है कि वे अंग्रेजी में करते हैं, पढ़ने का, और प्रकाशित करने का मौका, सौभाग्य से मिला है।
3. हम सभी आठवां दशक बनाम नवां दशक की पॉलेमिक्स से वाकिफ हैं। एक तरफ एंग्जायटी ऑफ इन्फ्लुएंस हैं और दूसरी तरफ एक तरक का एन्टी इनकम्बेन्सी फैक्टर। यह एक सत्तामूलक विवाद है जिसके बारे में एक बंजारा एक दिन साहित्य अकादमी की बिल्डिंग के बाहर गा रहा था: *इधर दस बरस में बदल जाये है दुनिया/उधर दस बरस में बदल जाये कबता/ऊ अस्सी के कवि थे हम ऊ नब्बे के/न ऊ कल के कवि थे न हम ऊ आज के/न ऊ कौनो करम के थे/न हम ऊ कौनो काज के/जै हो हिन्दी मैया की जै हो!*
4. ऐन उस हेजेमनी के कारण हिन्दी लेखकों में वामपंथ का आभास सबसे आसान अभिनय नहीं हो गया है?
5. असद जैदी, अनुवाद की भाषा, सामान की तलाश, लखनऊ, परिकल्पना प्रकाशन, प्र.स. 2008, पृ. 108